अस्मिता की खोज

अखिलेश्वर सिंह*

''वन गुहा कुंज मरू स्थल में, खोज रहा हूँ अपना विकास''

साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य प्रत्येक युग के समाज में अपने को ढूँढता आया है वह चाहे छायावाद (1918–1936) हो या उसके पूर्व का साहित्य। आचार्य शुक्ल ने लिखा है चूंकि ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है''[1] इसलिए जिस समय का जैसा समाज होगा, साहित्य भी वैसा ही होगा। अतः प्रत्येक युग की जातियाँ अपने तात्कालिक सन्दर्भ में जिन मूल्यों का निर्धारण करती है साहित्य उसी का मूल्यांकन करता है चाहे वह छायावादी साहित्य हो या 'भारतेन्दु युग' (1850–1900) या कि द्विवेदी युग (1900–1918) का साहित्य हो। अगर किन्ही कारणों से (राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक) इन मूल्यों में विघटन होता है तो पुनः साहित्य नये मूल्यों के खोज की ओर जनता को प्रेरित करता है– ''द्रुत झरो जगत क जीर्ण पत्र ! हे स्त्रस्त–ध्वस्त!! हे शुष्क–शीर्ण्।''[2] छायावादी साहित्य इन्हीं सन्दर्भों में अस्मिता की खोज का साहित्य है।

बीसवीं शताब्दी का शुरूआती समय जिसे साहित्य में 'छायावाद' कहा जाता है वस्तुतः हिन्दी कविता के सबसे प्रमुख काव्यान्दोलनों में से एक है जिसकी शुरूआत भक्ति आन्दोलन कविता से होती है। इसका मूल उत्स जहाँ एक ओर भारतीय स्वाधीनता संघर्ष और सांस्कृतिक चेतना में है वहीं दूसरी ओर साहित्यिक चेतना में भी है। छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद (1889–1936); निराला (1899–1961); सुमित्रानन्दन पंत (1900–1977); महादेवी वर्मा (1907–1987); प्रमुख हैं। यह वही दौर था जहां एक ओर रीतिकालीन कवियों की श्रृंगारिकता और मांसलता, द्विवेदी युगीन स्थूल वर्णन, इतिवृत्तात्मकता के कारण भावव्यन्जना शिथिल हो रहे थे और परम्परागत ढांचे के बन्धनों से मुक्ति की छटपटाहट थी वहीं दूसरी ओर प्रथम विश्वयुद्ध (1914–1918) के कारण समाज में फैल रही हताशा, निराशा, विषाद– अवसाद को ''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा'' (सुभाषचन्द बोस), ''स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'' (तिलक) जैस नारो से क्रान्तिकारियों ने लोगों में नयी चेतना, उर्जा, देश प्रेम की भावना का संचार कर रहे थे। किन्तु

***पूर्व छात्र स्नात्कोत्तर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी**

गान्धी जी उन्हें नरपशु होने से बचाने के लिए– ''रघुपति राघव राजा राम/ पतित पावन सीता–राम'' गाते थे। अंग्रेजो के तानाशाही शासन ने भारतीय जनमानस की सृजन शक्ति और कौशल को हतोत्साहित कर दिया। प्रेमचन्द (1880–1936) की प्रथम कहानी संग्रह 'सोजेवतन' (1908) को जब्त कर लिया, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानी 'चिनगारियाँ' (1925) को भी जब्त कर लिया। जनता की गुलामी साहित्य की भी गुलामी बन गयी। ऐसे में जनता सिर्फ एक नौकर और गुलाम बन गयी, उसके पास सिर्फ कर्तव्य थे अधिकार नहीं। गान्धी के राजनीति में आने से युवाओं में एक नया जोश और उमंग पैदा हुआ, युवा साहित्यकारों ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया। अपनी रचनाओं में समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य का बोध कराना शुरू किया। भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है, सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा कैसे हो इस पर चिन्तन शुरू किया और पत्र–पत्रिकाओं में अपने चिन्तन और विचार देने लगे–

''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण के ही मूल में है।'' (परिमल की भूमिका, निराला)। युवा स्कूल–कालेज छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़े, लोगों ने सरकारी नौकरियाँ छोड़ दी किन्तु 1922 में चौरी चौरा काण्ड के बाद जब गांधी जी ने अपना असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया तो लोगों का आजादी का भ्रम टूट गया। स्वाधीनता की कल्पना बिखर गयी लोग बेरोजगार हो गये हताशा और निराशा ने इनका मोहभंग कर दिया, देश के प्रति और अपने जीवन के प्रति भी। ''का चुप रहा साधि बलवाना'' का बीज मन्त्र जैसे जामवन्त ने हनुमान को सुनाया वैसे ही सामाजिक और सांस्कृतिक चेतनशील छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं से इनके अन्दर के ऊर्जा की पहचान करायी और नये ऊर्जा का संचार किया, अपने होने का मतलब समझाया। छायावाद कई सन्दर्भों में इन्हीं राजनैतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की एक गाथा है जिससे समय के दशा और दिशा का बोध होता है।

'जागरण गीत' छायावाद में अभिव्यक्ति का एक ऐसा माध्यम बना जो जनमानस में उर्जा के संचार का एक नया साहित्यिक विकल्प था। जिन परिस्थितियों ने मिलकर छायावाद को पनपने का वातावरण तैयार किया उन्हीं परिस्थितियों की अभिव्यक्ति छायावाद है। राष्ट्रीय स्वाभिमान का बोध कराने वाली कविताएँ निश्चय ही उन परिस्थितियों की पुकार थी जो अपने पूर्ववर्ती साहित्य (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग) से कई मायने में विशिष्ट थी। देश प्रेम की प्राचीन संकीर्ण–धारणा को दूर करके उसे विश्वमानवता में कल्पित और परिणति करना छायावादी कवियों की एक नयी तलाश थी जिसे 'प्रसाद' ने–''विजयिनी मानवता बन जाय'' (कामायनी) और

'आंसू'' (1925) में उन्होंने 'विश्व–सदन' कहा और न केवल भारत अपितु पूरे विश्व के कल्याण की कामना करते है। छायावादी 'जागरण गीत' देश के वीरपुत्रों को स्वतन्त्रता के लिए सीधे आहवान करती है– ''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से/प्रबुद्ध शुद्ध भारती/स्वयं प्रभा समुज्जवला/ स्वतन्त्रता पुकारती''। (चन्द्रगुप्त नाटक 1931) राष्ट्रीय चेतना और देश प्रेम के प्रति आस्था और सर्मपण जागरण गीत की विशेषता है। इसे प्रसाद ने– ''प्रशस्त पुण्य पंथ है'' कहा है। जिसको भूल करके 'मनु' ने बिना कर्म किये अपना विकास ढूँढ रहे थे–''वन गुहा कुंज मरूस्थल में, खोज रहा हूँ अपना विकास''[3]। यह विकास एकांगी नहीं बल्कि राजनीतिक, साम्प्रदायिक और सामाजिक, नैतिक विकास है जो चहुमुखी विकास के लिए संकल्पित है।

आजादी की सुबह के लिए जागरण गीतों ने शक्तिवर्धक का काम किया– ''तूँ अब तक सोयी है आली/आँखों में भरे विहाग री''।[4] (लहर) 'निराला' के यहाँ तो जागरण गीत क्रान्ति रूप में दिखाई पड़ता है– ''शेर की माँद में/आया है आज स्यार/जागो फिर एक बार'' (1926) बीती वह बीती अन्धरात''[5]। निराला शेर की माद (भारत) में स्यार जैसे (अंग्रेजो) लोगों का आकर हमारे ही घर में हमें गुलाम बनाकर रह रहे हैं; इसी के कारण चिन्तित हैं। उन्होंने याद दिलाया कि जब–जब विदेशीयों ने हम पर शासन किया हमने मिलकर उन्हें पराजित किया, वहीं एक बार फिर से दिखाना है। अंग्रेजी सत्ता की अन्धरात समाप्त होने की कल्पना का उल्लास प्रेरित करता है।

निराला ने एक निबन्ध में लिखा है–''क्रान्ति साहित्य की जननी है। नवीनता तभी पैदा होती है और साहित्य का रथ कुछ कदम आगे बढ़ता है। इसे ही जीवन कहते है।'' निराला बार–बार इसी स्वाधीनता के अभिप्राय को अपने प्रारम्भिक दौर की कविताओं में स्पष्ट करते हैं। अतः इस तरह की जागरण कविताएँ एक तरफ भारतीय सामाजिक जीवन में सुधार और उन्नति के आकांक्षी है तो दूसरी ओर पराधीनता से मुक्ति। इसी मुक्ति की क्रान्ति के लिए नये मौलिक शक्ति की कल्पना छायावादी कवियों ने की जिसको 'रामचन्द्र तिवारी' ने कहा कि– ''छायावाद मूलतः शक्ति काव्य है।''[6]

युगीन साहित्य को श्रृंगारिकता और वाह–वाह जैसे साहित्य की आवश्यकता न थी जिससे समाज विलासी और कर्तव्यहीन हो जाये, आवश्यकता थी ऐसे साहित्य की जो रगो में देश के प्रति, और हृदय में अपने प्रति (मोहभंग के कारण) स्वाभिमान जगाये। उसके पौरूष बल की याद दिला सके, शक्ति का संचार कर सके। क्योंकि जागरण गीत यदि क्रान्ति का पथ है तो शक्तिकाव्य क्रान्ति का हथियार। प्रसाद की कविताएँ शक्ति को संगठित करने की प्रेरणा देती है–

''शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरें हैं हो निरूपाय।[7]

हमारी शक्तियाँ देश, जाति, सम्प्रदाय, रंग, भाषा में बिखरे पड़े हैं एक आगे बढ़ता है तो दूसरा खींचने में लगा है। हम अपने में ही संगठित नही है तो दूसरे को क्या पराजित करेंगे। जैसे, एक कुत्ते की हार के पीछे उसके पडोसी कुत्ते ही होते है। इन्ही शक्तियों को संगठित करना है। इसीलिये निराला ने लिखा– ''अन्याय जिधर है उधर शक्ति'' (शक्तिपूजा) तब कारण पता चलता है कि कई–कई बार हम पराजित क्यों होते गये, क्योंकि हमारी शक्तियां तो बिखरी पड़ी थी। इसके समाधान के लिए निराला ने लिखा–''शक्ति की करो मौलिक कल्पना'' (शक्तिपूजा)। यह मौलिक शक्ति मनुष्य के अन्दर है इसको पहचानने की जरूरत है जिसे निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' के माध्यम से पहचान करायी है और प्रसाद ने कामायनी में मनु को 'श्रद्धा' द्वारा। जैसे– राम ने तो एक रावण से युद्ध किया किन्तु निराला को तो कई रावणों (परिवार–पड़ोस, सम्पादक, आलोचक) से युद्ध करना पड़ा। इसी मौलिक शक्ति को प्रसाद ने 'स्वयं प्रभा' आर 'विद्युत्कण' कहा इसी को महात्मा बुद्ध ने 'आत्मदीपो भव' कहा। 'निराला' ने तब कहा कि–''होगी जय होगी जय हे पुरूषोत्तम नवीन'' (शक्तिपूजा)। इन्ही शक्तियों के संधान के बाद विजय जरूर होगी। यह विजय मनुष्य की व्यक्तिगत विजय भी है और विश्वमानवता की विजय है।

सदियों से भोग्या समझे जानी वाली नारी के अस्तित्व के स्वरूप का निर्धारण छायावादी कवियों ने नये रूप में किया और एक नया छवि प्रस्तुत करने का काम किया जो अब तक न हुआ था। पंतने उसके लिए लिखा कि–बालिका मेरी मनोरम मित्र थी'' और 'सहचरी प्राण'। जिसे मुस्लिम धर्मग्रन्थों में ''स्त्री को उसके पति द्वारा चरने के लिए तैयार 'अनाज का खेत''[8] कहा गया है। उसी नारी को सामाजिक चेतना और उदात्त दृष्टिकोण के कारण ही प्रसाद ने 'प्रेरणास्रोत कहा–'' पीयूष स्रोत–सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में'' (कामायनी)। नारी से ही पुरूष का अस्तित्व निर्धारण है जिसे प्रसाद ने–''प्राण सत्ता के मनोहर भेद–सी सुकुमार'' (कामायनी) कहकर मानवीय चेतना जैविक सृजन और विकास की दृष्टि को स्पष्ट किया है और नारी में सभ्यता के विकास की शक्ति को रेखांकित किया है। महादेवी वर्मा ने लिखा हैं–''छाया–युग की नारी, पुरूष के सौन्दर्य बोध, स्वप्न, आदर्श आदि का प्रतीक है।''[9]

'निराला' की कविता 'तोड़ती पत्थर' (1937), विधवा (1919) नये समय की नयी अनुभूति है। ''श्याम तन–भर बंधा यौवन/नतनयन प्रिय कर्म रत मन'' (तोड़ती पत्थर) आभूषणों और आँचल में गौर क्षिलमिलाहे देह के सौन्दर्य मखमली, नर्म, मुलायम, नाजनीं, पद्मिनी समझी जाने वाली स्त्री का पत्थर तोड़ते हुए सुन्दर लगना, बहते पसीने में सुन्दर लगना निश्चय ही सौन्दर्य चेतना की नयी खोज थी।

'विधवा' नारी आज भी समाज में कितने उपेक्षित है यह छुपा नहीं है। जिसको समाज ने अस्विकार कर दिया, अपवित्र माना उस विधवा नारी को निराला ने– ''इष्टदेव के मन्दिर की पूजा–सी'' (विधवा); पंत ने ''तुम्हारे छूने में था प्राण/संग में पावन गंगा स्नान'' और ''अकेली सुन्दरता कल्याणी/सकल ऐश्वर्यों की संधना/ देवी!माँ!सहचरी! प्राण'' कहकर नारी को चहारदिवारी और घूंघट से निकाल कर उसे देवी बना दिया। छायावादी कवियों ने नारी की जो संकल्पना प्रस्तुत की निश्चय ही वह एक क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन था।

डॉ0 नामवर सिंह ने लिखा है–

''इसके फलस्वरूप पहली बार छायावादी कवियों में नारी को प्रेयसी का ऊँचा आसन प्राप्त हुआ। प्रेयसी, प्रिये, प्रियतमें और सखी, सजनी जैसे सम्बोधक जिस मात्रा में छायावादी कविता में व्यक्त किये गये पहले शायद ही किये गये हों''[10] इसीलिए छायावादी दौर के समस्याओं में युग चिन्तकों एवं विचारकों ने नारी स्वाधीनता और विधवा समस्या का परिदृश्य व्यापक रखा। इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए डॉ0 रामविलाश शर्मा ने लिखा है। 'छायावाद सामन्ती मूल्यों के विरूद्ध विद्रोह, स्वातन्त्रय का काव्य है।'

कविता जीवनोन्मुखी और मानव मात्र के लिए होती है। समाज के सांस्कृतिक गरिमा और विश्वमानवता की रक्षा उसका संकल्प होता है। मानव सभ्यता के हिसाब से कविता की आवश्यकता के सन्दर्भ में शुक्ल जी ने लिखा है– ''ज्यों–ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के आवरण चढ़ते जायेंगे त्यों–त्यों कविता की आवश्यकता बढ़ती जायेगी।''[11] इसलिये प्रत्येक युग में कविता के मूल्य अपने समाज की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित होते रहे। 'अतीत का गौरव गान' को छायावादी कवियों ने जनता में आत्म विश्वास जगाने का एक माध्यम बनाया। जिसमें प्रसाद और निराला ने महति योगदान दीये। 'निराला' ने 'दिल्ली' शीर्षक कविता में देश की दशा का चित्रण किया है– ''क्या यह वही देश है– भीमार्जुन का कीर्ति क्षेत्र/चिरकुमार भीष्म का पताका ब्रहमचर्य– दीप्त गीता गीत– सिंहनाद– मर्मवाणी जीवन संग्राम की– सार्थक समन्वय ज्ञान–कर्म–भक्ति योग का''।

महापुरूषों (राम, कृष्ण, भीम अर्जुन, दधीचि) के चरित्र का ज्ञान और अतीत के शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा सामाजिक विकास में सहायक होते हैं। इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता नैतिक और चारित्रिक उत्थान की थी। कल्पना विलासी और हीन भावना से ग्रसित समाज को गीता का उपदेश (ज्ञान–कर्म–भक्ति) फिर से उनके तक पहुंचाकर उसके अन्दर अस्तित्व का बोध कराने की आवश्यकता थी; जिसका उदाहरण पूरा 'कामायनी' महाकाव्य है। जहाँ ज्ञान ही ज्ञान हो वह देवलोक

बन जाता है उनमें भावना नही होती; भावना से ही मानव की उत्पत्ति हुई। ''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न थी, इच्छा कैसे पूरी हो मन की/ एक दूसरे से मिल न सके यही विडम्बना जीवन की।''[12] अर्थात ज्ञान, कर्म के साथ भावनामय जीवन की स्थापना।

यही भावनामय जीवन समाज में दीन, दुःखी और गरीब आदमियों के प्रति भी सहानुभूति जगाती है जो मानवीय कर्तव्य भी है मानवीय मूल्य भी और मनुष्य के आदर्श भी। निराला ने 'भिक्षुक' कविता में इस संवेदना का उजागर किया–'' वह आता– दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता/ पेट पीठ मिलकर एक/चल रहा लकुटिया टेक! मुठ्ठीभर दाने को– भूख मिटाने को।'' भारतीय दृष्टि ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की रही है। सम्पूर्ण चराचर जगत से आस्था यहाँ की विशेषता थी। जिस भारत के समृद्धि की बखान की जाती थी आज वह शक्ति विहीन, भावना विहीन है और किसान की दशा इतनी दयनीय हो गयी की आत्महत्या करने लगे। अपने पराये का भेद मिटाकर प्रसाद ने कामायनी में समता और समानता तथा अच्छे समाज की स्थापना के लिए उन्होंने अतीत से अपनी संकल्पना तैयार की और उसे आधुनिक समस्याओं के साथ जोड़कर परम्परा की नयी व्याख्या की। अतीत में अपने विकास का मार्ग देखा।

छायावादी कविता का जन्म द्विवेदी युगीन कविता की प्रतिक्रिया में हुआ जिसे डॉ0 नागेन्द्र ने– '' स्थूल के प्रति सूक्ष्मता का विद्रोह'' कहा। (सुमित्रानन्दन पंत, डॉ0 नागेन्द्र) यह विद्रोह सशस्त्र न होकर विषय वस्तु, विचार–सारणी और अभिव्यन्जना शक्ति का है जिसके कई सन्दर्भ है–

1. उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का।
2. भौतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातन्त्र्य का।
3. काव्य बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना का।

छायावाद के पूर्व द्विवेदी युगीन साहित्य का आदर्श उपयोगितावादी था। मैथिलीशरण गुप्त (1886–1964) ने– ''केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए। उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए'' (भारत भारती) कहकर उसकी उपयोगिता को स्वीकार किया। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवदी भी साहित्य को 'कला कला के लिए' नहीं मानते थे अपितु वे साहित्य के माध्यम से लोगों में रूचि परिष्कार देखना चाहते थे। वे न तो कविता को शब्द क्रीड़ा मानते थे और न ही रीतिकालीन कविता की तरह विलासिता की चीज। हिन्दी के कवियों से उनकी अपेक्षा थी कि – ''वह लोगों को रूचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचें कि साधारण व पढ़े–लिखे लोग में भी पुरानी कविता के साथ–साथ नयी कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो'' – (रसज्ञ रंजन)।

किन्तु छायावाद तक आते–आते स्थितियों परिस्थितियों में बदलाव आया। उपयोगिता (प्रयोजन, जिसे मम्मट ने यश, अर्थ, व्यवहार, परिवर्तन, रक्षा आदि छः माने है) के स्थान पर 'भावुकता पूर्ण ' (भावदशा) कविताएँ रची जाने लगी। पंत ने– ''वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान''। कहकर द्विवेदी युगीन काव्य दृष्टि से अपने को अलग कर दिया और कविता में वस्तु वर्णन (प्रबन्धकाव्य में कथा प्रसंग के भीतर आने वाली वस्तुओं–नांदी, पर्वत, नगर आदि का वर्णन) के स्थान पर अनुभूति के महत्व को स्थापित किया। यह साहित्य में एक नया विद्रोह था जिसका कारण था काव्य के नये स्वरूप का निर्माण। महादेवी वर्मा ने इसे– ''व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख–दुखात्मक अनुभूति के शब्द रूप'' कहा। यह अनुभूति और भावुकता वैयक्तिक थी। महादेवी की कविता– ''मैं नीरभरी दुख की बदली'' हो या निराला की पंक्ति– ''धिक् जीवन जो पाता ही आाया विरोध'' हो।

यह रचनाकार के वैयक्तिक अनुभूति की भावुकता है। आचार्य शुक्ल ने 'भावुकता' को– ''काव्य में स्वस्थ भावाभिव्यक्ति के स्थान पर अत्यधिक आवेगपूर्ण भावदशा का चित्रण''[13] कहा है। (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आलोचना कोश) जैसे, प्रसाद ने लिखा– ''हृदय ही तुम्हे दान किया क्षुद्र था उस पर गर्व किया।'' (झरना)

द्विवेदी युगीन कविता नैतिक रूढ़ियों (उपदेशात्मकता उपयोगिता, आदर्श, नैतिकता) का छायावादियों ने खुल कर विरोध किया। इसके बाद स्वच्छन्द अभिव्यक्ति कवियों द्वारा की गयी। 'प्रेम' के 'ऐकान्तिकता' को तोड़कर इसका खुलकर इजहार किया जो उस समय नैतिकता के विरूद्ध था ''जात की कहारिन वह/आती है होते तड़का/ मैं उसके पीछे मरता हूँ''। (निराला) तथा पन्त ने– ''वह बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।'' और 'इतिवृत्तात्मकता' (खण्डकाव्य, महाकाव्य में पुराणों, कथाओं, आदर्श चरित्रों को अपनी रचना का बिषय बनाया), यथार्थ चित्रण के स्थान पर सूक्ष्म सौन्दर्य से मानव–सौन्दर्य की यात्रा की। यह सौन्दर्य दृष्टि छायावादी कवियों की अखिल विश्व के सौन्दर्य–चयन की ओर थी। पंत ने छायावाद के सम्बन्ध में लिखा है– 'छायावाद में नये मूल्य ने सबसे अधिक सशक्त अभिव्यक्ति सौन्दर्य–बोध में पायी है। इसीलिए सौन्दर्य बोध उस युग के काव्य की सबसे मौलिक तथा प्रमुख देन रही।'

कवियों ने इतिहास–स्मृति और विषाद–भाव से प्रकृति के आन्तरिक लय को पहचाना जो जीवन के तट पर उदास पड़ी है उस रागिनी को पहचाना। इस तरह की कविताएँ जैसे– 'जूही की कली', 'यमुना के प्रति', आदि अपने आन्तरिक लय को प्रकृति के साथ खोलती है। इस तरह के उदाहरण काव्य की नैतिकता के विरूद्ध है किन्तु यह मानसिक स्वातत्र्य की कल्पना है जो परम्परागत रिवाज में कवि अपने को बाँधना नहीं चाहता।

द्विवेदी युग में खड़ी बोली काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी जिसके परिमार्जन और परिष्कार का कार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों हो पाया जिसका माध्यम बनी 'सरस्वती पत्रिका' (1903)। किन्तु उसमें निहित काव्य–सम्भावनाओं (कथ्य और शिल्प की विशिष्टता) को पहचान कर उपयोग करने का कार्य शेष था। जो छायावादी कवियों ने किया। किन्तु इन कवियों ने परम्परागत काव्य–बन्धनों को मानने से इन्कार कर दिया। पंत ने लिखा– ''खुल गये छन्द के बन्ध/प्रास के रजत पास।'' छायावादी कवियों के स्वच्छन्द विचारधारा के कारण मुक्त छन्द (छन्द के बन्धन से मुक्त) का उदय हुआ। उनका मानना था कि छन्द के बन्धन प्रायः भावाभिव्यक्ति में बाधक होते हैं। छन्द मुक्त कविता से अभिप्राय छन्द की रूढ़ियों (मात्रा, तुक) से मुक्ति है। इसके प्रवर्तक 'निराला' थे। इनकी प्रथम मुक्त कविता 'जूही की कली' (1916) है। छन्द के बन्धनों को तोड़ना केवल परम्परागत ढाँचों को तोड़ना नहीं था बल्कि अपने भावों के सहज प्रकाशन की एक प्रक्रिया थी, जिसमें छन्द के बन्धन अवरोध उत्पन्न कर रहे थे। किन्तु ध्यान देना चाहिए कि छन्द मुक्त का अर्थ 'शब्द के लय' से था न कि 'अर्थ के लय' से।

जैसे छन्द के बन्धन से कवियों ने मुक्ति पायी वैसे ही 'गीतिपरक' (प्रगीत) काव्य लिखकर काव्य रूप (महाकाव्य, खण्डकाव्य) के पैमानें को भी छायावादी कवियों ने तोड़ा। प्रगीति काव्य में जीवन के वाह्य वास्तविकता की अनुभूति न होकर कवि के भावना का उच्छलन अधिक होता है तथा इसकी अनुभूति क्षणिक तथा तीव्र होती है जो उस काल के मनुष्य का अश्रु, हास, उल्लास, विषाद को साहित्यिक–माध्यम–रूप से प्रशमित करता है। सौन्दर्य मनुष्य की जैविक आवश्यकता में से एक है। यह मानवीय चेतना में जीजीविषा जागृत करता है और ध्वनियों से अपना भी जीवन प्रसार करती है''। अतः शुक्ल लिखा कि–''नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है।''[14] इसका सम्बन्ध साहित्य और समाज दोनों से था। ऐसी कविताएँ–गहरे भावों को उकेरती है।

'मैं' शैली छायावाद की विशेषता है। अनुभूतियों का ऐसा उपक्रम जिसमें, स्वाधीनता, प्रकृतिचित्रण, आत्म संघर्ष और वैयक्तिक प्रेम तथा आत्म साक्षात्कार जैसे अनुभव सन्दर्भ हो, अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट शैली की माँग करती है। शैली ही उस युग–विशेष की कविता की पहचान कराती है। छायावादी कवियों ने मैं शैली को अपने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया– ''मैंने 'मैं' शैली अपनायी'' (निराला)। आचार्य शुक्ल ने छायावाद का प्रयोग दो अर्थो में किया है– एक 'रहस्यवाद' (अनन्त, अज्ञात, प्रियतम को आलम्बन बनाकर प्रेम की व्यन्जना) के अर्थ में जिसे वे मध्ययुगीन रहस्य भावाना (सिद्धों, नाथों के पदों तथा संतों की बनियों एवं उलट वासियों में) का नया संस्करण मानते हैं। दूसरा, काव्य शैली या पद्धति विशेष के

अर्थ में। कवियों ने जीवन और जगत के अनेक पक्षों की मार्मिकता का साक्षात्कार किया और अपने सौन्दर्य को स्वछन्द प्रकृति से जोड़ा।

निराला ने 'संध्या सुन्दरी' कविता में संध्या की बेला को अपनी कल्पना की परी मानकर आसमान से बड़े नाटकीय ढंग से धीरे–धीरे उतरते हुए चित्रित किया है जैसे कोई प्रेमी अपनी आँख बन्द करके प्रेमिका को अपने पास आने का अनुभव करता है। इसी कल्पना को निराला ने – ''कविता कानन की रानी'' कहा है और पन्त की 'वीणा' में प्रकृति के रूपों की सौन्दर्यानुभूति का प्रसार दिखाई देता है– ''प्रथम रश्मि का आना रंगिणी तूने कैसे पहचाना '' (प्रथम रश्मि)। कवियों ने प्रकृति चेतना को मानवीय चेतना में रूपान्तरित करके उनके सृजनात्मक शक्ति और सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिकल्पना को बढ़ाया है साथ ही रागात्मक प्रवृत्तियों (प्रेम, क्रोध आदि) की ओर प्रवृत किया। इस तरह डॉ0 नागेन्द्र का ''स्थूल के प्रति सूक्ष्मता का विद्रोह' अपने अन्दर कई स्तर के विद्रोह को दबाये हैं जो साहित्य को नयी दिशा एवं दृष्टि दी। चाहे कथ्य का विद्रोह हो या शिल्प का; जो परिवर्तन हुआ, नवीनता आयी वही छायावाद के दीर्घजीवी का कारण बना है।

अन्त में अपनी स्पष्टता में कहना चाहेगें कि संवेदना और रूप में कोई कविता हमारे अपने परिवेश की, समाज– संस्कृति की, जीवन–जगत की स्थितियों परिस्थितियों से उपजी होती है। इसमें युग के समय और समाज दोनों निहित होते हैं, जन–जन की कथा व्यथा समाहित रहती है, भले ही अभिव्यक्ति का साधन–माध्यम चाहे जो हो। इन छायावादी कवियों ने कुछ ऐसे कार्यो और अनुभवों को साहित्य के माध्यम से साझा किया जो एक नयी पहल थी, उनके चिन्तन–मनन का प्रतिफल था। उन्होनें अपने समय को देखा समाज को देखा समाज की आवश्यकता को समझा। इन कवियों की कविताओं में अपना व्यक्तिगत परिचय भी है और साहित्य का भी परिचय है जिसका ज्ञान होना लोगों को और अपने को जरूरी था उसकी खोज इस युग के कवियों ने की।

सहायक ग्रन्थ –

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 15 : रामचन्द्र शुक्ल
2. युगान्त, पृ0–48 सुमित्रानन्दनपंत
3. कामायनी (इड़ा सर्ग) पृ0 69 – जयशंकर प्रसाद
4. लहर प्र0 35 – जयशंकर प्रसाद
5. तुलसीदास पृ0 42 – निराला
6. हिन्दी साहित्य – संवेदना और विकास पृ0 194 – रामस्वरूप चतुर्वेदी

7. कामायनी (श्रद्धा सर्ग) पृ0 32 – जयशंकर प्रसाद
8. सूराबकारा – आयत 223
9. दीपशिखा पृ0 46 – महादेवी वर्मा
10. छायावाद पृ0 51– नामवर सिंह
11. चिन्तामणि (भाग एक) पृ0 96 – रामचन्द्र शुक्ल
12. कामायनी (रहस्यसर्ग) पृ0 134 – जयशंकर प्रसाद
13. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचनाकोशपृ0 121– रामचन्द्र तिवारी
14. चिन्तामणि (भाग एक) पृष्ठ 118 – रामचन्द्रशुक्ल)